मंगल मिलन का शुभ अवसर (आध्यात्मिक होली)

होली का त्योहार भारत के प्रमुख त्योहारों में से एक है। परंतु आज इस त्योहार का रूप अपने आदिम रूप से बिल्कुल ही बदला हुआ है। वास्तव में यह एकता और मेल-जोल का एक महत्वपूर्ण त्योहार था किंतु आज इसका रूप हुल्लड़बाजी में परिणित हो चुका है, जिससे बहुत से शिष्ट लोगों के मन में इसके प्रति घृणित भाव पैदा हो गया है। अत: आवश्यकता है हम होली के आध्यात्मिक रहस्य को जाने ताकि जीवन मार्ग को सही दिशा मिल सके जिसके आधार पर लोक और परलोक अथवा व्यवहार और परमार्थ दोनों सिद्ध हो सकेंगे।

एक मान्यता के अनुसार होलिका शब्द का अर्थ भुना हुआ अन्न से है। इसलिए होलिका के अवसर पर लोग अग्नि में अन्न डालते हैं और गेहूँ व जौ के बालों को भूनते हैं। योगियों की बोलचाल में ज्ञान अथवा योग की अग्नि से उपमा दी जाती है। अत: जैसे भुना हुआ बीज आगे उत्पत्ति नहीं कर सकता वैसे ही ज्ञान युक्त और योग युक्त अवस्था में किया गया कर्म भी अकर्म हो जाता है अर्थात् वह इस लोक में विकारी मनुष्यों के संग में फल नहीं देता। अत: होलिका शब्द भी हमें इस बात की स्मृति दिलाता है कि परमपिता ने पुरानी सृष्टि के अंत में मनुष्यों को ज्ञान-योग रूपी अग्नि द्वारा कर्म रूपी बीज को भूनने की जो सम्पत्ति दी थी, हम उस पर आचरण करें। चन्द लकड़ियों और उपलों को इकट्ठा करके जलाने को हम होली न मान लें बल्कि योगाग्नि में अपने पुराने एवं खराब संस्कारों को दग्ध करें और आगे के कर्मों को ज्ञान युक्त होकर करें।

भारतवासियों की मान्यता है कि यह त्योहार बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। इस अवसर पर लोग वेद के रक्षोहगं बलगहम् आदि राक्षस विनाशक मंत्रों से होलिका दहन किया करते थे। इसका भी रहस्य यही है कि हम राक्षसी आहार, आचार, व्यवहार आदि से अपनी रक्षा करें। इसीलिए रंग खेलना अर्थात् आत्मा को ज्ञान-रंग या सत्संग के रंग में रंगना है और होलिका दहन हमें इस बात की याद दिलाता है कि प्राणी अपने ही किए पाप के ताप से जल मरता है, अत: हमें पाप नहीं करने चाहिए। अर्थात् अब भगवान की आज्ञानुसार आपसी शत्रुता और द्वेष को मिटा देना चाहिए और आपस में जो अनुचित बातें हो चुकी हैं उन्हें हो-ली अर्थात् होना था सो हो गया समझ कर होली का पावन त्योहार मनाना चाहिए जिससे यथार्थ आत्मिक मंगल मिलन होता है और मन का मैल धुल जाता है। बीती ताही बिसार दे आगे की सुधि ले, जो बन आए सहज में ताहि में चित्त दे, इस शिक्षा पर चलकर और आत्मा की चोली ज्ञान से रंगकर परमात्मा से वास्तविक मंगल मिलन मनाना चाहिए।

होली का त्योहार शिवरात्रि के बाद क्यों?

भारत में जो भी त्योहार मनाए जाते हैं उनके क्रम में एक न एक ज्ञान युक्त रहस्य छिपा हुआ है। जैसे होली के पहले शिवरात्रि इसलिए मनाई जाती है क्योंकि शिवरात्रि महोत्सव परमपिता परमात्मा के अवतरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। जैसे कि शिव नाम के अर्थ से ही सिद्ध होता है कि परमात्मा का अवतरण मनुष्य आत्माओं के कल्याणार्थ होता है। इसके पूर्व मनुष्यों पर पाँच विकारों का रंग चढ़ा होता है। सारे संसार में अज्ञान अंधियारा छाया होता है। ऐसे समय में सत्-चित्त-आनंद स्वरूप परमात्मा शिव आकर अपने संग का रंग अर्थात् ज्ञान-योग का रंग मनुष्यात्माओं को देते हैं। इस वृत्तांत की याद में आज तक शिवरात्रि के बाद होली मनाई जाती है।

इससे स्पष्ट है कि ज्ञान के रंग में आत्मा की चोली को रंगना ही वास्तविक होली मनाना है। माया का रंग तो हर एक मनुष्य पर चढ़ा हुआ है। अब ईश्वरीय संग के रंग में आत्मा को रंगना ही होली के आध्यात्मिक अर्थ का आधार लेना है, क्योंकि ईश्वरीय संग अथवा ज्ञान का रंग ही वास्तव में हुल्लास भरने वाला है। जब हम एक-दूसरे पर परमात्म ज्ञान रंग लगाते हैं तभी आत्मा पवित्र रहने का व्रत लेती है अर्थात् पवित्रता रक्षा करती है।

आजकल होली के दिन छोटे-बड़े सभी मिलकर एक दूसरे के साथ होली खेलते हैं, यहाँ तक कि जबरदस्ती भी रंग लगाते हैं। वास्तव में लगाना तो चाहिए ज्ञान का रंग परंतु लोग भौतिकवाद, बहिर्मुखता और देह अभिमानवश आध्यात्मिकता को तिलांजलि देकर भौतिक रंग से एक दूसरे को बुरी तरह रंगकर इस निर्धन देश का करोड़ों रूपये का रंग और कपड़े खराब कर देते हैं। ऐसी होली खेलने का क्या लाभ जिसमें खेल ही खेल में अनेक लोगों का दिल दुखता है और देश का धन भूखों की भूख मिटाने के काम न आकर धूल में मिल जाता है।

होली का त्योहार कैसे मनाएँ

जब सभी मनुष्य आत्माएँ ज्ञान रंग द्वारा अपने हृदय को प्रभु मिलन के रंग में रंग कर अनेकता में एकता का परिचय दें तभी सच्ची होली के त्योहार की सार्थकता है। ऐसी होली ईश्वरीय मर्यादा की ही है। स्थूल रंग वाली होली से तो अधिक ही लड़ाई-झगड़े होते हैं। छोटे बच्चे बड़ों की पगड़ी उतारते हैं और बड़े भी एक दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं तथा एक दूसरे को गाली-गलौज भी देते हैं। उफ, देखिए आज ऐसे पावन-पर्व को लोगों ने कैसे हुल्लड़बाजी का पर्व बना दिया है।

कुछ समय पूर्व तक भारत के कई नगरों में यह रिवाज चला आता था कि होली के दिनों में नगरों में देवी-देवताओं के स्वांग निकलते थे। स्वांगों के चेहरों पर पाउडर और अबरक लगाकर देवताओं के चेहरों को बड़े सुन्दर और तेजोमय प्रदर्शित करने का यत्न किया जाता था। देवताओं के स्वांगों के मस्तकों के स्थान पर छोटे-छोटे बल्ब लगे होते थे जो कि देवात्माओं की जागृति के सूचक होते थे। ये स्वांग नगर के प्रमुख रास्तों से गुजरते थे। इन जुलूसों से देवता लोग कहीं-कहीं रास करते हुए भी दिखाए जाते थे। जुलूस तथा सवारी में सबसे आगे बैल पर शिव की सवारी होती थी। इस प्रकार होली मनाकर लोग देवताओं की निरोगी काया, तेजोमय आकृति, उल्लासपूर्ण जीवन इत्यादि की झाँकियाँ अपने सामने लाते थे ताकि अपने जीवन के लक्ष्य की झलक आँखों के सामने आ जाए और एक बार फिर अपने पूर्वजों एवं पूज्यों की याद भी आ जाए। ये सवारी अथवा जुलूस इन रहस्यों के भी स्मारक थे कि जब परमात्मा शिव का अवतरण इस सृष्टि पर होता है तो उनके (अर्थात् शिवरात्रि) बाद ही देवी-देवताओं का जमाना आता है। भले ही इस रीति से होली मनाना कुछ अच्छा था किंतु आज क्यों न हम सब मिलकर ऐसी होली मनाएँ कि स्वांगों की बजाय सतयुग के साक्षात् देवी-देवताओं का जमाना फिर से धरा पर लौट आए और सभी आत्मा बल्ब के समान जग जाए। वास्तव में ऐसी होली मनाना ही सच्ची आध्यात्मिक और परमार्थिक होली मनाना है जो कि एक बार खेलने से मनुष्य आत्माओं का जन्म-जन्मांतर मंगलमय हो जाता है।

परंतु आज जो लोग उपर्युक्त रीति से होली मनाते हैं उन्हें लोग कहते हैं—यह भी कोई होली का त्योहार है? कहाँ है रंग और कहाँ है पिचकारी? आपके कपड़ों और चेहरों पर तो रंग दिखाई ही नहीं दे रहा। जो आप कह रहे हैं उसे थोड़े ही होली कहा जाता है? उनकी यह बात सुनकर कबीर का यह दोहा याद आता है— रंगी को नारंगी कहे, बना दूध का खोया,

चलती को गाड़ी कहें, देख कबीरा रोया।

संसार की तो उल्टी ही चाल है। यदि आप वास्तविक होली मनाएँ तो कहेंगे कि इस बार की होली फीकी रही और यदि नगर में हुल्लड़बाजी हो तब समझते हैं इस बार होली अच्छी लगी। परंतु वे नहीं जानते कि द्वापरयुग और कलियुग की गुलाल-अंबीर की होली तो संगम की वास्तविक होली की यादगार है जो कि ज्ञान-गंगा से खेली गई है।

ब्रह्माकुमारी निर्मला